वसिष्ठ गुहा-एक परिचय

यदि पृथ्वी में कोई स्वर्ग है तो निश्चय ही वह वसिष्ठ गुहा है। पहाड़ की खोह को गुहा कहते हैं। यह वसिष्ठ गुहा आश्रम ऋषीकेश से 22 कि.मी. और शिवपुरी से (जहाँ नौका विहार की कई संस्थाएँ हैं) 6 कि.मी. की दूरी में बद्रीनाथ–केदारनाथ मार्ग पर स्थित है।

हिमालय में कई गुहाओं का सम्बन्ध प्राचीन ऋषियों एवं सन्तों से अनादिकाल से चला आ रहा है जैसे व्यास–गुहा, उद्धालक–गुहा आदि। वसिष्ठ ऋषि, सप्तऋषियों में से एक, ब्रह्मा जी के मानस पुत्र माने जाते है। वे सूर्यवंशी राजाओं के कुलगुरु थे जिनमें भगवान विष्णु के अवतार श्री रामचन्द्र जी का जन्म हुआ था। ऐसी कथा आती है कि वसिष्ठ जी के सौ पुत्र उनके प्रतिद्वन्दी विश्वामित्र जी द्वारा आभिचार प्रयोग से मारे गये थे। यद्यपि वसिष्ठ जी उच्चकोटि के ब्रह्मज्ञानी संत और महात्मा थे, तो भी अपने पुत्रों के नृशंस वध से अत्यन्त व्यथित हो गये और उन्होंने अपने जीवन का अंत एक पवित्र नदी में कूदकर करना चाहा। दैवी प्रेरणा से वे नदी के दूसरे तट पर सकुशल छोड़ दिए गये, जहाँ उनकी पत्नी अरून्धती जी अपने पति की प्रतीक्षा कर रही थीं। यह विचार कर कि वसिष्ठ जी को अपने पुत्रों की याद सताएगी, अरून्धती जी ने दक्षिण भारत की ओर यात्रा करने का प्रस्ताव रखा। रास्ते में सम्भवतः उन्होंने इसी गुहा में पड़ाव डाला और सैकड़ों वर्षों तक तपस्या की। यह बात उल्लेखनीय है कि वसिष्ठ जी ने इक्ष्वाकु वंश के पांच पीढ़ियों के राजाओं का पौरोहित्य किया था (जिसमें प्रत्येक राजा का राज्य–काल सहस्रों वर्षों का होता था)।

यह गुहा मुख्यमार्ग से 120 फीट नीचे पवित्र गंगा नदी के तट पर बसी हुई है। थोड़ी ही दूर पर "अरून्धती गुहा" है, जिसे गंगा के रेतीले तट पर पांच मिनट चलकर पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार के वसिष्ठ आश्रम और भी कई जगह पर हैं जैसे श्रीलंका और कर्नाटक में बी.आर. हिल्स।

कौन कह सकता है कि कितने महात्माओं, ऋषियों, मुनियों और सिद्धों ने इस गुहा में निवास किया होगा और अपनी तपस्या द्वारा इसके आध्यात्मिक वातावरण और माहात्म्य को चार चाँद लगाए होंगे। गुहा के एक छोर में जहाँ शिव लिंग स्थापित है, उसके पीछे एक सीधी सुरंग है, जिसमें हाथ डालने पर वह बंद पाई जाती है। ऐसी मान्यता है कि यह गुहा बीस कि.मी. और आगे ऊपर हिमालय में घंटा–कर्ण मन्दिर तक गयी है। हमारे गुरुदेव, स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज, जो

स्वामी ब्रह्मानन्द जी के शिष्य और जिनके परमगुरु रामकृष्ण परमहंस थे, ने 1928 से इस गुहा में तपस्या की थी। उनके अनुसार कई सिद्ध–महात्मा हजारों वर्षों से इस गुहा में पीछे अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा (जिनको हमारी ये स्थूल आँखे नहीं देख पाती है) तपश्चर्या कर रहे हैं।

बहुत से दर्शनार्थी जिनमें न केवल भारतीय वरन् विदेशी लोगों को भी कई अद्‌भुत अनुभव इस गुहा में ध्यान करते समय हुए हैं। अप्रैल 1996 में विश्वविख्यात स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का एक पत्र दो फोटो के साथ मिला था। उन्होंने ये फोटो अपने गुहा आगमन के अवसर पर खिंचवाई थी। उसमें यह देखने को आता है कि प्रकाश की दो रश्मियां शिवलिंग के ऊपर से निकलती हुई गुहा के छत और दीवारों से होती हुई गुहा के प्रवेश द्वार से आधी दूरी पर धरती में विलीन हो जाती हैं। मेरी समझ में यह एक या दो अदृश्य सिद्धों का परमात्मा में अंतिम विलय हो जाने का सूचक है। इसका प्रमाण भगवान् रमणमहर्षि के निर्वाण के समय की घटना है, जब बहुत से लोगों ने कई शहरों में एक चमकते हुए तारे की ज्वाला को आकाश में बड़ी रफ्तार से जाते हुए देखा था और यह बात समाचार पत्रों में छपी भी थी।

बहुतों ने कहा है कि जब वे गुहा में ध्यान करते है तो उनकी चैतन्यता की गहराई, जो उन्होंने अपने साधन काल में काफी अभ्यास के बाद भी नहीं पाई थी, प्रगाढ़ हो जाती है।

दो और घटनाओं का उल्लेख यहाँ किया जाता है जिनका विवरण् एक पुस्तक "Fragrant Flowers" में दिया गया है : –

1. 1994 में कोई समय एक डच महिला गुहा आयी थी, जब मैं (स्वामी शांतानन्द) वहां था। उसका यह पहला दर्शन था। प्रातः भोजन के समय तक वह गुहा में ध्यानस्थ थी। मुझसे मिलते ही उसने तुरन्त पूछा कि क्या मैंने अपने गुरू का कभी पुनर्दर्शन किया है? (गुरुदेव ने अपना शरीर फरवरी 1961 में छोड़ दिया था) मुझे यह प्रश्न अजीब सा लगा और मैंने कहा "नही"। भोजनोपरांत उसने मेरे कमरे में आकर निम्नलिखित अपना विलक्षण अनुभव बताया :–

   "दो घंटे ध्यान के उपरान्त जब मैंने अपनी आँखें एक दम खोली तो मैंने एक हँसते हुए स्वामी जी को अपने सामने खड़े हुए देखा। बाहर जो गद्‌दी पर फोटो रखी हुई है, उनसे बिलकुल मिलते–जुलते थे। अंतर केवल इतना था कि उनके हाथ में एक छड़ी थी। मैंने सोचा कि यह भ्रममात्र है। स्वामी जी ने मुस्कुरा कर कहा "मेरे प्यारे बच्चे, मैं उतना ही सच हूँ जितना तुम हो। मैं कोई भ्रम नहीं हूँ"। मुझे बड़ा अचम्भा हुआ कि उन्होंने मेरे विचारों को इतना सही ताड़ लिया। उन्होंने पूछा – "ए! तुम क्या चाहती हो?" मैंने उत्तर दिया

"ज्ञान"। वे ठहाका मारकर हँस पड़े और अर्न्तद्यान हो गये। मुझे इस महिला पर विश्वास हो गया क्योंकि उसने अपने विवरण में गुरूदेव की सही झांकी प्रस्तुत की थी।

हमारे गुरुदेव छड़ी रखते थे जो गद्दी के फोटो में नहीं थी। अपने शिष्यों और दर्शनार्थियों से यही सवाल अकसर पूछते थे कि "ए, तुम क्या चाहते हो?" और बच्चों की तरह वे सदा हंसते रहते थे।

2. 1980 में जब मैं (स्वामी शांतानन्द) गुरुदेव की जयन्ती के उपलक्ष्य में गुहा गया था जहां मुझे श्रीमद्भागवत का पारायण करना था, तब एक महिला श्रीमती पा. से भेंट हुई थी। भागवत पाठ के प्रथम दिन श्रीमती पा. ने पाठ में भाग नहीं लिया, अपितु वे गुहा के अंदर जाकर ध्यान करने लगी। इसका कारण था उनकी पाठ में अरूचि और संस्कृत भाषा की अनभिज्ञता। ध्यान में उन्होंने गुरूदेव को मुस्कुराते हुए अपने सामने खड़े हुए देखा। अपनी आँखों का उन्हें विश्वास नहीं हुआ। गुरूदेव बोले "हाँ, मैं वास्तव में तुम्हारे सामने खड़ा हुआ हूँ। तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है। आज एक वृद्ध अवकाश प्राप्त सैनिक जो दाढ़ी रखा हुआ है, गुहा में पहली बार दर्शानार्थ आयेगा। वह यहाँ भोजन करने से इन्कार करेगा और वापस लौट जायेगा। जब यह होगा तब तुम विश्वास कर लेना। कल मैं तुम्हें मन्त्रदीक्षा दूँगा।" श्रीमती पा. ने इसे किसी को नहीं बताया। शाम को मैंने उन्हें बहुत दुखी देखा तो इसका कारण पूछा। तब उन्होंने पूरा किस्सा बताया और कहा "आज मैंने ऐसे किसी वृद्ध आदमी को नहीं देखा। शायद यह सब मेरी ही कल्पना थी।" तब मैंने जोर से कहा "नहीं, यह सब सच है। आज वह सैनिक आया था और स्वामी चै. ने उसको पुस्तकालय में 'योग वासिष्ठ' नामक पुस्तक दिखाई थी और आग्रह किया था कि वे भोजन करके जायें। परन्तु उन्होंने कोई कारण बताकर मना कर दिया और चले गये।" श्रीमती पा. अत्यन्त प्रसन्न हुई। अगले दिन सबेरे जब वह गुहा में ध्यान के लिए गयी, गुरुदेव फिर प्रकट हुए। वह मन ही मन प्रार्थना कर रही थी, "मुझे केवल राम–मंत्र ही चाहिए और कोई नहीं।" गुरुदेव मुस्कुराए और बोले, "मैं तुम्हें केवल राम–मंत्र ही दूँगा। चिन्ता मत करो। क्या तुम्हें ध्यान के लिए कोई श्लोक आता है? यदि है तो सुनाओ।" उन्होंने तब एक श्लोक सुनाया – गुरुदेव ने उन्हें एक मंत्र दिया और कहा कि बाहर जाकर भागवत–पाठ में शामिल हो जाओ। केवल मुझे ही श्रीमती पी. ने यह अद्भुत घटना विस्तार से बताई।

स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण आश्रम छोड़ने के पश्चात् 1923

के आसपास हिमालय भ्रमण किया। पैदल भ्रमण के दौरान 1928 में वे गुहा पहुँचे। तब यह गुहा बड़े–बड़े पेड़ों से घिरी एक वीरान जंगल में थी। 25 वर्षों से अधिक समय तक उन्होंने इस गुहा के भीतर ध्यान–तपस्या की। फिर गुहा के पास एक कमरे में रहने लगे। वे पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे। कहा जाता है कि एक शेर शाम को गंगा के उस पार से आकर गुहा के द्वार के निकट सोया करता था और गुरूदेव गुहा के दूसरे छोर में सोया करते थे। एक वर्ष तक गुरूदेव को अपना सांनिध्य देकर वह शेर चल पड़ा और फिर वापस नहीं आया। गुरूदेव ने महाशिवरात्रि, 13 फरवरी 1961 के शुभ मुहूर्त में महा–समाधि ली। उनके भक्त अब भी उनकी आध्यात्मिक तरंगों को यहाँ के समस्त वातावरण में महसूस करते हैं। यह शिवजी का एक सिद्ध–स्थल और पुण्य भूमि है। आज भी कभी–कभी कुछ लोगों को गुहा के ऊपर की पहाड़ से आधी रात रुद्री आदि वेदघोष या डमरू तथा मृदङ्ग आदि वाद्यों की आवाज़ सुनायी पड़ती है।

इस गुहा–आश्रम का संचालन श्री पुरुषोत्तमानन्द ट्रस्ट द्वारा किया जाता है। इसके संचालक गुरूदेव के प्रिय शिष्य स्वामी चैतन्यानन्द जी हैं। ट्रस्ट द्वारा निर्मित एक अंग्रेजी चिकित्सालय भी गूलर गांव में चलाया जा रहा है जिसमें बाहरी मरीजों की निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था है। बद्रीनाथ और केदारनाथ के यात्रियों के लिए आश्रम उनके सूखे राशन की व्यवस्था करता है। उत्तरांचल प्रान्त का यह आश्रम एक बहुत उपयोगी और धार्मिक स्थल है जिससे प्रान्त की गरिमा और भी बढ़ जाती है। गुरूदेव का एक प्रसिद्ध संदेश नीचे उद्घृत है :–

हम क्या खोज रहे हैं? आनन्द

जिसकी खोज में हम हैं, वह हमारे भीतर ही है। हममें एक दिव्य और अक्षय आनन्द का महासागर लहरा रहा है, जिसकी एक ही बूँद हमें सर्वदा के लिए आत्मविभोर करने की शक्ति रखती है तथा हमारे समस्त क्लेशों को पूर्णतया नाश कर सकती है। किन्तु मूर्खतावश इसे हम बाहर ढूंढते हैं। स्त्री, पुत्र, धन–सम्पत्ति, नाम और यश के द्वारा आनन्द प्राप्ति की कल्पना मिथ्या और भ्रमपूर्ण है। हमारी दशा ठीक उस मृग की भाँति है जो अपनी नाभि में कस्तूरी धारण करता है, किन्तु स्वयं इसका रहस्य नहीं जानता और अपने चारों ओर की वस्तुओं, लता, वृक्ष–तृण आदि में उसकी दिव्य सुगन्धि को ढूंढता फिरता है। अतएव महर्षियों द्वारा प्रणीत उपदेश ही विशुद्ध, सात्विक और चिरस्थायी आनन्द प्रदान करते हैं।